# हज़रत फातिमा ज़हरा स0 की मिसाली ज़िन्दगी

**इमादुल उलमा अल्लामा सै0 अली मुहम्मद नक़वी साहब क़िब्ला**

इस्लाम के आगमन से पहले अरब में औरतों के साथ जो रवैय्या अपनाया जाता था उससे तारीख़ी सफहात भरे पड़े हैं। अरबों में यह ख़याल आम था कि औरत से माँ, बाप, क़ौम, क़बीला वालों को कोई फाएदा नहीं पहुँच सकता बल्कि नुक़सान ही नुक़सान पहुँचता है। जैसे उनके नज़दीक औरत सिर्फ बेकार और जान का अज़ाब थी। अरबों का यही ख़याल कभी उनसे बच्चियों को ज़िन्दा दफन कराता था, कभी कमसिन लड़कियों को क़त्ल करवाता था और यही ख़याल अरबों को औरतों की बेहुरमती करने पर आमादा करता था।

इस्लाम ने अरबों की और दूसरी बेजा हरकतों के साथ इसकी भी रद की और इस ख़याल की जड़ें उनके ज़हन से काटीं।

रसूल (स0) ने अपने अक़वाल से और क़ुर्आन ने अपनी आयात से औरतों के मरतबे पर रोशनी डाली और वह जिस मरतबे की हक़दार थीं वह मरतबा इस्लामी शरीअत में दिलवाया लेकिन ख़ुदा के अहकाम और रसूल के अक़वाल के साथ–साथ किसी ऐसी अमली मिसाल की भी ज़रूरत थी जिसे अम इन्सान नमूना बना सकते और जिसके नक़्शे क़दम पर चल कर मन्ज़िले मक़सूद तक पहुँच सकते।

मर्दों और औरतों दोनों के लिए एक–एक नमूने की ज़रूरत थी। मर्दों के लिए एक ऐसा नमूना होना चाहिए था जो बताए कि वह औरतों के साथ किस तरह का बर्ताव करें और औरतों के लिए मिसाल की ज़रूरत थी कि वह माँ, बाप, शौहर, भाई, बेटों के साथ किस–किस तरह से पेश आएँ और अपनी ज़िन्दगी को क्या शक्ल दें। इन दोनों ज़रूरतों का ख़याल रखते हुए हकीमे मुतलक़ परवरदिगारे आलम ने हज़रत फातिमा ज़हरा (स0) को रसूले इस्लाम (स0) की आग़ोश में भेजा कि अगर मर्दों को नमूने की ज़रूरत हो तो पैग़म्बर का किरदार सामने रख लें और अगर औरतों को रहनुमा की ज़रूरत हो तो फ़ातिमा ज़हरा (स0) को पेशे नज़र रखें।

अगर जनाबे फातिमा (स0) की सीरत पर नज़र डाली जाए तो सबसे पहले ख़ुदा की इबादत और रसूल (स0) की इताअत सामने आती है, बाप की इताअत का आलम यह है कि एक बार फातिमा (स0) ने हार पहना, यह कोई बुरी बात नहीं है मगर जब पैग़म्बरे ख़ुदा (स0) ज़हरा (स0) के घर तशरीफ लाए तो उस हार को देखकर ख़ामोश से हो गए। बस रसूल (स0) की ख़ामोशी का मतलब समझदार बेटी समझ गई और वह हार भी ख़ुदा की राह में दे दिया, जब रसूल (स0)

को इसका इल्म हुआ ते रिवायात में है कि तीन बार हज़रत ने इरशाद फरमायाः

''वही किया जो मैं चाहता था''

रसूल (स0) की इताअत का इससे बढ़कर सुबूत क्या हो सकता है कि न कोई रसमी हुक्म था न ज़ाहरी ख़्वाहिश, बस रसूल (स0) ने थोड़ी सी ख़ामोशी अख़्तियार कर ली थी मगर रसूल को समझने वाली सैय्यदा (स0) ने उस ख़ामोशी के पर्दे के पीछे छुपे हुए मानी समझ गई और बाप के दिल की छुपी हुई आरज़ू को पूरा कर दिया जिस वजह से बेसाख़्ता रहनुमाए इस्लाम (स0) को कहना ही पड़ा कि ''सैय्यदा ने वही किया जा मैं चाहता था।''

सिर्फ यही नहीं बल्कि ज़िन्दगी के हर–हर मोड़ पर सैय्यदा वही करती रहीं जो रसूल (स0) चाहते थे। बाप को मुश्रिकीने कुरैश लहूलहान करते रहे मगर सैय्यदा सब्र करती रहीं चूँकि रसूल (स0) की यही ख़ाहिश थी। रसूल (स0) को मक्का छोड़ना पड़ा मगर सैय्यदा राज़ी बरिज़ा रहीं। हिजरत की रात जब रसूल (स0) अली (अ0) को अपने बिस्तर पर छोड़कर जा रहे थे अगर फातिमा (स0) गिरया ही करने लगतीं तो यक़ीनन बना बनाया काम बिगड़ जाता चूँकि कुफ्फार हक़ीक़त को जान लेते कि रसूल (स0) तशरीफ लिये जा रहे हैं मगर बावजूद कमसिनी के सैय्यदा ख़ामोश रहीं क्योंकि रसूल (स0) यही चाहते थे।

रात भर तलवारों और तीरों की चमक लचक और झन्कार के बीच रहीं मगर उफ न की। हालाँकि उस वक़्त सिर्फ आठ साल की उम्र थी इस वजह से कि यही बाप की ख़ाहिश थी फिर रसूल (स0) ने आपके लिए जो शौहर चुना वह ऐसा जिसके बारे में मदीने की औरतें चर्चा करती रहती थीं कि उसके पास दुनिया का माल बिलकुल नहीं, मगर बाप से उसके बारे में जो–जो फ़ज़ाएल सुने थे उसकी बिना पर सैय्यदा ख़ामोश रहीं। इसलिए कि अपने बाप की मरज़ी ऐन उनकी ही मरज़ी थी।

फिर शौहर जंगों में ज़ख्मी होते रहे, सैय्यदा ख़ामोश रहीं। इस वजह से कि उन सब में बाप की ख़ुशी छुपी थी। ग़र्ज़ कि ऐसा कोई मौक़ा नहीं जब बाप की इताअत न की हो और वह न किया हो जो रसूल (स0) चाहते थे तब ही तो पैग़म्बरे इस्लाम (स0) कहने के लिए मजबूर हो गए कि: ''अहब्बु अह्ली इलैइय्या फातिमता''

''मुझे अपने अहलेबैत में सबसे ज़्यादा फातिमा (स0) से मुहब्बत है।''

बाप की इताअत ही की तरह शौहर के अहकाम की पाबन्दी भी सीरते फातिमा (स0) में अहम मक़ाम रखती है। तारीख़ में कोई ऐसा मक़ाम नहीं मिलता जब जनाबे अमीर (अ0) जनाबे ज़हरा (स0) से नाराज़ हो गए हों। जनाबे अमीर (अ0) और फातिमा ज़हरा (स0) के ताल्लुक़ात शादीशुदा ज़िन्दगी का रौशन बाब हैं।

हर माँ को अपनी औलाद से लाड–प्यार और मुहब्बत होती है। जनाबे सैय्यदा (स0) को भी अपने बच्चों से मुहब्बत थी क्यों न होती, रसूल (स0) बता चुके थे कि सैय्यदा (स0)! तुम्हारे दोनों बच्चे इमाम होंगे।

मगर जब इस्लाम का सवाल आ जाता था तो बच्चों की मुहब्बत इसके आगे कोई हैसियत

नहीं रखती थी। यही वह विरसा था जो माँ से सानिये ज़हरा हज़रत ज़ैनब (अ0) को मिला था कि मज़हब पर सब कुछ कुर्बान, चाहे औलाद हो चाहे भाँजे भतीजे हों और चाहे ख़ुद अपनी ज़ात।

जनाबे ज़हरा (स0) की सीरत में शानो शौकत को बिलकुल दख़ल न था एक लम्बे अरसे तक फातिमा (स0) ख़ुद ही घर का काम करती रहीं। चक्की चलाती थीं, आटा पीसती थीं, झाड़ू देती थीं, खाना पकाती थीं। गर्ज़ घरदारी की तमाम ज़रूरतें ख़ुद ही पूरी करती थीं। हालाँकि इन तकलीफों की वजह से हाथों की खाल फट जाती थी। उंगलियाँ लहुलहान हो जाती थीं मगर सब्र व इस्तेक़लाल का यह आलम था कि एक हर्फे शिकायत ज़बान पर नहीं आता था बल्कि हमेशा ख़ुदा का शुक्र अदा करती थीं। एक बार बाप से कनीज़ की ख़ाहिश की तो रसूल (स0) एक सवाल कर बैठे। बेटी तुम्हारे लिए कनीज़ ज़्यादा बेहतर है कि एक तस्बीह बता दूँ, जो ख़ुदा को बहुत पसन्द है। इन दोनों चीज़ों में से क्या लोगी........? फातिमा (स0) ने तस्बीहे ख़ालिक़ को कनीज़ पर तरजीह दी।

हालाँकि कुछ अरसे बाद रसूल (स0) ने ख़ुद ही एक कनीज़ फ़िज़्ज़ा इनायत कर दी लेकिन उसके साथ–साथ यह हुक्म भी दे दिया कि फ़िज़्ज़ा को ज़्यादा तकलीफ न पहुँचने पाए। तुमसे ज़्यादा ज़हमत न बर्दाश्त करना पड़े। फातिमा (स0) ने जिस तरह इरशादे रसूल (स0) पर अमल किया और जो रवैय्या अपनी कनीज़ के साथ अख़्तियार किया वह भी न सिर्फ औरतों के लिए बल्कि उन तमाम लोगों के लिए जिनका कोई मातहत हो नमूने की हैसियत रखता है। फातिमा (स0) एक दिन ख़ुद खाना पकाती थीं और घर का काम करती थीं और कनीज़ फ़िज़्ज़ा बैठकर खाती थीं और एक दिन कनीज़ पकाती थी फातिमा (स0) खाती थीं और फिर सादगी और शान व शौकत के बचने की सबसे रौशन मिसाल फातिमा ज़हरा (स0) की शादी है जिसमें न हाथी हैं न घोड़े, न आँखों को चकाचौंध कर देने वाला माहोल और पुरतकल्लुफ लिबास न शाहाना दहेज़। बस रसूल (स0) हैं, चन्द अस्हाब हैं, फटे–पुराने लिबास में दुल्हा है, सादे कपड़ों में पर्दे के पीछे दुल्हन है दहेज़ में कुछ मिट्टी के बर्तन हैं और कुछ ज़िन्दगी की ज़रूरत की चीज़ें हैं। टूटा–फूटा मकान है और बस। यह है शहंशाहे अरब की दुख़्तरे नेक अख़तर की शादी।

अगर फातिमा (स0) की शादी के नमूने पर मुसलमान अमल करें तो बहुत सी बेकार रिवायात की जंजीरें पिघल जाएँ।

फातिमा ज़हरा (स0) की सीरत में सबसे ज़्यादा अहमियत पर्दे की है यह सीरते फातिमा (स0) का इन्तिहाई रौशन बाब है।

ज़मान–ए–रसूल में शुरु से फातिमा (स0) ही वह ख़ातून थीं जो बुर्क़ा व चादर में रहते हुए भी नहीं निकलती थीं। हालाँकि अली–ए–मुर्तज़ा (अ0) का मकान मस्जिदे नबवी से बिलकुल मिला हुआ था बल्कि उसी में था। रसूल (स0) ने तमाम अस्हाब के दरवाज़े जो मस्जिद में खुलते थे बन्द करवा दिये थे, सिर्फ जनाबे अमीर (अ0) का दरवाज़ा खुलता रहा, फिर भी फातिमा (स0) कभी अपने बाप के पीछे नमाज़ पढ़ने नहीं गयीं न कभी

ख़ुत्बा सुनने के लिए तशरीफ ले गयीं। हालाँकि रसूलुल्लाह (स0) का ख़ुत्बा सुनने का शौक़ इतना था कि जब बड़े साहबज़ादे हसने मुजतबा (अ0) ख़ुत्बा सुनकर वापस आते थे तो फातिमा (स0) उनसे अपने बाप के ख़ुत्बे का मज़मून सुन लिया करती थीं। फिर भी यह पर्दादारी का लिहाज़ ही था जो इस ''शौक़'' के बढ़ते हुए सैलाब को चट्टान बनकर रोके हुए था और जिसने फातिमा (स0) को रसूल (स0) का ख़ुत्बा सुनने से बाज़ रखा था।

एक बार रसूल (स0) ने अपने अस्हाब से ख़ुत्बे के बीच सवाल किया कि बताओ! औरत के लिए सबसे अच्छी बात क्या है?

सब ख़ामोश रह गए। जब जनाबे फातिमा (स0) को ख़बर पहुँची तो उन्होंने कहलाया कि औरत के लिए सबसे अच्छी चीज़ यही है कि न उसकी नज़र किसी ग़ैर मर्द पर पड़े और न किसी ग़ैर मर्द की नज़र उस पर। जब रसूल (स0) तक यह जवाब पहुँचा तो बहुत खुश हुए और फरमाया कि क्यों न हो, फातिमा (स0) मेरा ही तो एक जुज़ है।

फातिमा को पर्दे का जितना ख़याल था उसका अन्दाज़ा इससे भी हो सकता है कि जब रसूल (स0) की आँखें बन्द हो गयीं और दुश्मनाने अहलेबैत (अ0) ने अली (अ0) व फातिमा (स0) को तरह–तरह की तकलीफें पहुँचाना शुरु कर दीं जिनकी वजह से घुल–घुल कर फातिमा (स0) मुसलसल क़ब्र की मन्ज़िल से क़रीब हो रही थीं उस ज़माने में अस्मा बिन्ते उमैस बयान फरमाती हैं कि एक दिन मैंने फातिमा (स0) को बहुत फिक्रमन्द देखा, जब उसका सबब उनसे पूछा तो जनाबे सैय्यदा ने जवाब दिया कि मैं सोच रही हूँ कि अरब में औरतों का जनाज़ा उठाने का जो दस्तूर है, उसमें औरतों के क़दो क़ामत पर मर्दों की नज़र पड़ती है। मेरा भी जनाज़ा इसी तरह उठेगा। असमा का बयान है कि मैंने कहा कि बीबी जिस ज़माने में मैं हबश में थी उस वक़्त वहाँ एक क़िस्म का सन्दूक़नुमा जनाज़ा देखा था जिसमें यह ख़राबी नहीं है और फिर अस्मा ने लकड़ी[1] मंगाकर सन्दूक़ की शक्ल बना दी। जनाबे फातिमा (स0) इस शक्ल को देखकर इतना ख़ुश हुईं कि उन्होंने कहाः ''अस्मा तुमने मेरा पर्दा रखा है ख़ुदा तुम्हारा पर्दा रखेगा।'' और वफाते रसूल (स0) के बाद पहली बार फातिमा (स0) के लबों पर मुस्कुराहट नज़र आयी और उन्होंने वसिय्यत फरमाई कि मेरा जनाज़ा ऐसे ही सन्दूक़ में रात के अंधेरे में उठाया जाए जिस पर अमल किया गया और फातिमा (स0) का जनाज़ा दुनियाए इस्लाम का पहला जनाज़ा था जो इस तरह उठाया गया। मगर एक बार फातिमा (स0) ने अपनी इस तरह की पर्दादारी की राहे ख़ुदा में क़ुर्बानी भी पेश की थी और वह मुबाहला का मौक़ा था। वह फातिमा (स0) जो कभी हुजरे से निकलकर मस्जिद में भी नहीं आईं थीं। बस बुर्के और चादर में पोशीदा होकर पूरा शहर तैय करके जंगल में नसारा से रूहानी मुक़ाबले के लिए चली गई थीं चूँकि वह पर्दा भी ख़ुदा और रसूल (स0) की इताअत में था और यह हुक्म भी ख़ुदा और रसूल का था कि मुबाहला की मन्ज़िल में इस मेयार के पर्दे को ख़ैरबाद कहकर सिर्फ बुर्के और चादर में पोशीदा होकर चली आयीं। यह सबक़ भी

ज़ैनब व उम्मेकुल्सूम (अ0) को अपनी माँ ही से मिला था जिसको दुनिया ने शहादते हुसैनी के बाद देख लिया। यह और बात है कि उस वक़्त ज़ुल्म के हाथों उनके सरों से चादरें भी छिन चुकी थीं।

बज़ाहिर तो हज़रत फातिमा (स0) ने कोई जिहाद नहीं किया। (चूँकि औरतों पर जिहाद वाजिब नहीं है) मगर उनकी पूरी ज़िन्दगी ख़ुदा के रास्ते में जिहाद है। जो यक़ीनन उस जिहाद से बहुत ज़्यादा क़ाबिले क़द्र है जो तलवार हाथ में लेकर मैदाने जंग में किया जाता है। चन्द ही ऐसे पाक नफ्स ख़ुदा के बन्दे हुए हैं जो इस कूचे में क़दम रख सके हैं।

हज़रत फातिमा की सीरत की यही वह हसीन मोड़ थे जिनकी वजह से रसूल (स0) बावजूद बाप होने के उनकी इज़्ज़त करते थे। तिरमिज़ी ने हज़रत आएशा से रिवायत की है कि जब रसूल (स0) फातिमा को देखते थे तो सर व क़द ताज़ीम को खड़े हो जाते थे। और फातिमा (स0) को लाकर अपनी जगह पर बिठाते थे। रसूल (स0) यह इज़्ज़त बाप होने की वजह से नहीं करते थे और न करने का मौक़ा था बल्कि इज़्ज़त उन कमालाते फातिमा (स0) की हैसियत से करते थे। ऐसा नहीं है कि रसूल (स0) को फातिमा (स0) से वह मुहब्बत नहीं थी जो एक बाप को बेटी से होती है या उस मुहब्बत का मुज़ाहेरा नहीं हुआ। यह मुज़ाहेरा उस वाक़ेए से भी होता है कि जब रसूल (स0) किसी जंग पर तशरीफ ले जाते तो सबसे बाद में जनाबे सैय्यदा से मुलाक़ात करते थे। और जब आते थे तो सबसे पहले मिलते थे, यह उसी मुहब्बत का मुज़ाहेरा था जो एक बाप को अपनी बुलन्द मरतबे वाली बेटी से होती है। फातिमा (स0) की सीरत के शक्ल व सूरत यही थे जिनकी वजह से पैग़म्बरे ख़ुदा (स0) को कहना पड़ा कि फातिमा (स0) मेरा जुज़ है जिसने उसे तकलीफ पहुँचायी उसने मुझे तकलीफ दी, जिससे वह नाराज़ उससे मैं नाराज़ और जिससे मैं नाराज़ उससे ख़ुदा नाराज़....... मगर रसूल (स0) की वफात के बाद जो–जो तकलीफें मुसलमानों ने फातिमा (स0) ज़हरा को पहुँचायीं वह तसव्वुर से बाहर हैं............मुसलमनों ने फातिमा (स0) का जाएज़ हक़ फिदक छीन लिया। फातिमा (स0) के घर के क़रीब लकड़ियाँ इकटठा करके आग लगा दी। यह तो माद्दी तकलीफें थीं इसके अलावा रूहानी तकलीफें भी पहुँचायी गयीं। इससे बढ़कर रूहानी तकलीफ क्या हो सकती है कि उस लड़की को जिसके बाप को मुश्रिकीन भी ''सादिक़'' मानते थे और ख़ुद जिसे ख़ुदा ने ''सादिक़ीन'' की जमात में शरीके मुबाहला किया। मुसलमानों ने (मआज़ल्लाह) झूठा क़रार दे दिया। मगर यह फातिमा (स0) की सीरत का कारनामा है कि यह कहने के बावजूद किः ''मुझ पर वह मुसीबतें पड़ीं जो अगर दिनों पर पड़तीं तो वह काली रात हो जाते।'' कभी मुसलमानों के हक़ में बद्दुआ नहीं की।

हज़रत फातिमा ज़हरा (स0) की ज़िन्दगी वह ज़िन्दगी है जो न सिर्फ औरतों के लिए नमूना है या मुसलमानों के लिए चिराग़े राह है बल्कि तमाम इन्सानियत के लिए मिसाली हैसियत रखती है।

□□□